यदि मुझे विश्वास की प्रकृति का बोध होता है तो वह विश्वास खत्म हो जाता है। इसी तरह जब भय का पूर्ण बोध होता है तो वह खत्म हो जाता है; जब लोभ का पूर्ण बोध होता है तो वह खत्म हो जाता है। क्या बोध एक-के-बाद-एक क्रमशः होता है, या संपूर्ण परिदृश्य का एक साथ पूरा बोध होता है?...

जे. कृष्णमूर्ति

जे. कृष्णमूर्ति परिसंवाद
अप्रैल–जून 2006
संपादक : प्रो. कृष्णनाथ
सहसंपादक : मुकेश

इस अंक में: पृष्ठ संख्या

खंड : 1
विचार और प्रत्यक्ष बोध 3

खंड : 2
कृष्णमूर्ति फाउंडेशन की गतिविधियां 30

अनुवाद : मुकेश

जे. कृष्णमूर्ति : विचार को इतना अधिक महत्त्व मनुष्य ने क्यों दिया है?

डेविड बोम : आपने कहा है कि विचार कई मायनों में सुरक्षा देता है, न केवल मनोवैज्ञानिक तौर पर बल्कि भौतिक तौर पर भी।

कृ. : हां, लेकिन विचार अपने-आप में सुरक्षित नहीं है।

डे.बो.: विचार सुरक्षित नहीं हो सकता क्योंकि यह एक प्रतिबिम्ब ('रिफ्लेक्शन') मात्र है।

कृ. : हां, वह स्वयं सुरक्षित नहीं है, इसलिए बाहर सुरक्षा ढूंढ़ता है।

डे.बो.: लेकिन वह सुरक्षा ढूंढ़ता क्यों है?

कृ. : क्योंकि विचार निरन्तर परिवर्तनशील है, लगातार गतिशील है।

डे.बो.: लेकिन इससे यह तो स्पष्ट नहीं होता कि वह उसी अवस्था में संतुष्ट क्यों नहीं रह सकता।

कृ. : क्योंकि वह अपनी नश्वरता को देखता है।

डे.बो.: पर वह शाश्वत या स्थायी ही क्यों होना चाहेगा?

कृ. : क्योंकि जहां स्थायित्व है वहां सुरक्षा है।

डे.बो.: यदि विचार यह कह कर संतुष्ट हो जाता है कि 'मैं असुरक्षित हूं, अस्थायी हूं', तो यह प्रकृति की तरह होता और केवल इतना कहता, 'मैं आज यहां हूं और कल कहीं और होऊंगा।'

कृ. : बिल्कुल। लेकिन मैं उससे संतुष्ट नहीं हूं। क्या यह आसक्ति के कारण है?

डे.बो.: लेकिन क्या है आसक्ति? विचार क्यों किसी चीज़ से स्वयं को बांधना चाहेगा? क्यों नहीं वह सिर्फ यह कहता – 'मैं केवल विचार हूं, प्रतिबिम्ब भर?

कृ. : इस तरह तो आप विचार को काफी प्रज्ञाशील बना रहे हैं। अगर यह कहे, 'मैं बस प्रकृति की तरह हूं, लगातार गतिशील, बस आता हूं, चला जाता हूं...'

डे.बो.: अब क्या आप कह रहे हैं कि विचार यांत्रिक है इसलिए वह ऐसा कर रहा है? तब फिर हमें यह देखना होगा कि एक यांत्रिक क्रियाप्रणाली को अनिवार्य रूप से सुरक्षा की खोज क्यों करनी चाहिए। एक मशीन को विशेष रूप से किसी की खोज नहीं करनी पड़ती – हम एक मशीन बना सकते हैं और वह चलती जाएगी।

कृ. : बिल्कुल। जब तक ऊर्जा है वह चलती जाएगी।

डे.बो.: अगर वह खराब हो जाती है तो वहीं उसका अंत हो जाता है।

कृ. : लेकिन क्या विचार को इसका अहसास होता है कि वह यांत्रिक है?

डे.बो.: नहीं, पर विचार ने एक गलती की है, उसकी अंतर्वस्तु में ही कुछ गड़बड़ी है, जिसका अर्थ है कि विचार को इसका आभास नहीं कि वह यांत्रिक है। लेकिन इसका क्या यह मतलब हुआ कि विचार यह सोच लेता है कि वह यांत्रिक नहीं है?

कृ. : सर, एक यांत्रिक वस्तु आहत नहीं होती।

डे.बो.: नहीं होती, वह बस कार्य करती रहती है।

कृ. : जबकि विचार आहत होता है।

डे.बो.: और विचार सुख भी पाता है।

कृ. : हां, सुख, पीड़ा, और बाकी सब कुछ। चलिए पहले हम एक चीज़ को लेते हैं : यह आहत होता है। क्यों होता है यह आहत? क्योंकि इसने अपनी एक छवि बनाई हुई है, और जो चीज़ इसने बनाई है उसमें वह सुरक्षा की तलाश कर रहा है। क्या ऐसा नहीं है?

डे.बो.: हां, पर यह स्पष्ट नहीं है कि वह उस तरह की सुरक्षा की तलाश शुरू ही क्यों करता है। यदि इसकी शुरुआत एक यंत्र-प्रणाली के रूप में हुई थी तो...

कृ. : यह कुछ ज्यादा ही दिलचस्प है। विचार यह अनुभव क्यों नहीं करता कि वह यांत्रिक है? वह ऐसा क्यों मान लेता है कि वह एक मशीन से अलग है?

डे.बो.: हां, वह एक तरह से यह मान सकता है कि उसके पास प्रज्ञा और संवेदना है और वह मशीन से हटकर एक जीवित वस्तु है।

कृ. : मुझे लगता है मूल बात यही है कि वह यह सोच लेता है कि वह जीवंत, प्राणवान है। और इसलिए वह स्वयं को गैर-यांत्रिक अस्तित्व के गुणों से जोड़ लेता है। विचार चतुर है, वह स्वयं पर ऐसे गुण आरोपित कर लेता है जो मूलतः उसके पास हैं ही नहीं। वह ऐसा क्यों करता है?

डे.बो.: आप कह रहे थे कि विचार किसी तरह यह महसूस कर सकता है कि वह यांत्रिक है – जिसका अर्थ होगा कि उसके पास कुछ प्रज्ञा ज़रूर है।

कृ. : हां। क्या यह विचार अनुभव करता है कि वह यांत्रिक है, या प्रत्यक्ष बोध ('परसेप्शन') से यह देखना संभव होता है?

डे.बो.: लेकिन पहले आपने जो कहा था उससे यह अलग दृष्टिकोण लगता है।

कृ. : मैं केवल पता लगा रहा हूं।

डे.बो.: विचार कई अंशों से मिलकर बना है जिन्हें मिलाकर एक साथ रख दिया गया है। अब अगर यह बोध होता है कि विचार यांत्रिक है तब इसका आशय है कि प्रज्ञा बोध में है।

कृ. : क्या हम यह कह रहे हैं कि स्वयं विचार के पास प्रज्ञा और बोध की गुणवत्ता है, और इसीलिए उसे यह बोध हो जाता है कि वह यांत्रिक है?

डे.बो.: यह कुछ विचित्र होगा।

कृ. : या केवल बोध होता है और वह बोध कहता है कि विचार यांत्रिक है।

डे.बो.: हां, हम उसे सत्य की संज्ञा देते हैं।

कृ. : हां, लेकिन दो चीज़ें हैं। या तो विचार के पास स्वयं ही यह बोध और प्रज्ञा है, जिससे उसे अपने यांत्रिक होने का अहसास हो जाता है, अथवा केवल बोध है जो सत्य है और वह बोध

ा कहता है कि विचार यांत्रिक है।

डे.बो.: हां, पर पहले वाला विचार अन्तर्विरोधी लगता है।

कृ. : ठीक है। क्या इससे इस बात का उत्तर मिल जाता है कि विचार आंशिक, अपूर्ण ('फ्रैग्मेंटरी') क्यों है?

डे.बो.: अगर विचार यांत्रिक है तो उसे आंशिक या विखंडित होना ही होगा।

कृ. : क्या विचार यह अनुभव नहीं कर सकता कि वह यांत्रिक है?

डे.बो.: पिछले संवाद में आपने कहा था कि विचार की प्रकृति के सचेत बोध के साथ विचार व्यवस्थित हो जाता है।

कृ. : तब फिर हमें पीछे कहीं और जाना होगा। चेतना में जो चीज़ें समाहित हैं वे विचार द्वारा रखी गई हैं। चेतना की सारी सामग्री विचार की उपज है – चेतना ही विचार है।

डे.बो.: हां, यह पूरी प्रक्रिया है।

कृ. : हां। अब क्या विचार यह सब देखता है, या विचार से रहित एक प्रत्यक्ष बोध होता है जो यह कहता है कि विचार यांत्रिक है?

डे.बो.: तब विचार को यह कैसे पता चलता है कि उसे क्या करना है? हम पिछले दिनों यह कह रहे थे कि जब सत्य का बोध होता है...

कृ. : तो क्रिया होती है।

डे.बो.: ...क्रिया होती है, और विचार उस क्रिया के बारे में सजग हो जाता है।

कृ. : हां, ठीक है।

डे.बो.: अब, क्रिया के प्रति सजग होने में क्या विचार यांत्रिक रह जाता है?

कृ. : नहीं, तब विचार यांत्रिक नहीं रह जाता है।

डे.बो.: आपको यह कहना होगा कि विचार अपनी प्रकृति बदलता है। यही वह बिन्दु है जिसे हमें समझना है, कि विचार की कोई

निश्चित प्रकृति नहीं है। क्या आपको ऐसा लगता है?

कृ. : हां।

डे.बो.: मुझे लगता है कि हमारी बातचीत का ज्यादातर हिस्सा इस बात की ओर संकेत करता है कि विचार की एक नियत प्रकृति है, लेकिन अब हम कह रहे हैं कि विचार बदल सकता है।

कृ. : हां, विचार बदलता ही है।

डे.बो.: पर मेरा मतलब है कि यह मूलभूत रूप से बदल सकता है।

कृ. : रुकिए, मुझे कुछ दिखाई दे रहा है, हम दोनों को ही कुछ दिखाई दे रहा है। हमने कहा कि पूर्ण बोध सत्य है। वह बोधा यथार्थ में सक्रिय होता है। बोध जो कि सत्य है वह केवल यथार्थ में क्रियाशील हो सकता है। मुझे किसी चीज़ का पूर्ण बोध होता है और यह विचार की क्रिया नहीं है।

डे.बो.: हां, वह प्रत्यक्ष क्रिया है।

कृ. : हां, वह प्रत्यक्ष बोध है। वह बोध सीधे क्रिया करता है।

डे.बो.: बिना विचार के।

कृ. : यही तो मैं पता लगाना चाहता हूं।

डे.बो.: जब ख़तरे का बोध होता है तब यह तुरंत सक्रिय होता है, बिना विचार के।

कृ. : बिल्कुल। विचार को तब इसका पता चलता है और वह इसे शब्दों में ढालता है। इसका अर्थ है कि पूर्ण बोध होता है और वही सत्य है। वह बोध यथार्थ के क्षेत्र में क्रियाशील होता है। वह क्रिया विचार की उपज नहीं होती; समग्र की क्रिया होने के कारण विचार एक परिवर्तन से गुजरता है।

डे.बो.: आप कह रहे हैं कि विचार समग्र का अंश है, समग्र में समाहित होने के कारण वह बदलता है। क्या यही आप कह रहे हैं?

कृ. : नहीं, मैं तो केवल अन्वेषण कर रहा हूं। जब वह समग्र को देखता है तो वह सत्य है।

डे.बो.: बोध के कारण समग्र बिल्कुल भिन्न होता है।

कृ. : वह आंशिक नहीं है।

डे.बो.: नहीं, वह पूर्णतः एक है, किंतु भिन्न।

कृ. : हां, और वह क्रिया करता है। वह क्रिया विचार की उपज नहीं है, विचार द्वारा निर्धारित नहीं है। यह बात साफ है। तब विचार का उस क्रिया से क्या संबंध है?

डे.बो.: हम कह सकते हैं कि विचार मस्तिष्क की कोशिकाओं पर आधारित एक भौतिक प्रक्रिया है। अब बोध की क्रिया किसी तरह उन कोशिकाओं पर कार्य करेगी – क्या नहीं करेगी?

कृ. : हां, बिल्कुल ऐसा ही है। वह करेगी ही।

डे.बो.: और इस कारण विचार भिन्न होगा।

कृ. : बिल्कुल सही। इसका मतलब है कि आप किसी चीज़ को संपूर्णता में देखते हैं और वह पूर्ण बोध उस आंशिक अनुभूति से अलग होता है जो मस्तिष्क की गतिविधि का स्वभाव रहा है। जब पूर्ण बोध और क्रिया होती है तो मस्तिष्क की कोशिकाएं इससे अवश्य प्रभावित होती हैं।

डे.बो.: यह भी तो संभव है कि मस्तिष्क की कोशिकाओं को प्रभावित करने के साथ-साथ वह विचार की प्रकृति को भी बदल दे।

कृ. : रुकिए, यह कुछ बारीक है। यह एक सदमे की तरह है। मस्तिष्क के लिए यह बिल्कुल ही नयी चीज़ है।

डे.बो.: और इसीलिए प्रत्यक्ष बोध मस्तिष्क की भौतिक संरचना को पूरी तरह भेदता हुआ निकलता है।

कृ. : हां। हम इसके बारे में और सरल होते हैं। यदि आप देखते हैं कि विभाजन, विखंडन भयानक ख़तरा है, यदि आप सच में यह देखते हैं, तब क्या यह आपके सोचने के पूरे तरीके को प्रभावित नहीं कर देता?

डे.बो.: हां, पर इसके साथ ही विचार ने इस प्रभाव को न होने देने का एक रास्ता ढूंढ़ लिया है।

कृ. : ऐसा ही है, यही मैं पता लगाना चाहता हूं। विचार प्रतिरोध

करता है।

डे.बो.: लेकिन क्यों? एक यंत्र प्रतिरोध नहीं खड़ा करेगा।

कृ. : नहीं, क्योंकि यह उसकी आदत है। वह ऐसा करने के लिए संस्कारबद्ध हुआ है, वह उसी खांचे में रहना चाहेगा। और बोध आकर उसे झकझोर देता है।

डे.बो.: हां, पर विचार अपने को स्थिर कर लेता है, वह एक निर्धारित अवस्था से चिपके रहना चाहता है। यदि हम इस दृष्टि से देखें कि विचार की कोई निश्चित प्रकृति नहीं है तो वह यांत्रिक अथवा प्रज्ञाशील कुछ भी हो सकता है।

कृ. : नहीं, अभी मैं विचार के साथ 'प्रज्ञा' शब्द नहीं जोडूंगा।

डे.बो.: पहले हमने कहा था कि विचार की कोई निश्चित प्रकृति नहीं हो सकती है और यह आवश्यक नहीं कि वह यांत्रिक हो।

कृ. : विचार निर्धारित खांचों में काम करता है, वह आदतों और स्मृतियों में जीता है, और बोध इस पूरे ढांचे पर असर डालता है।

डे.बो.: सही है। बोध के चलते विचार बिल्कुल भिन्न हो जाता है।

कृ. : हां, बोध के कारण विचार भिन्न होता है।

डे.बो.: क्योंकि बोध विचार की भौतिक संरचना में प्रवेश कर गया है। लेकिन अभी हम विचार को प्रज्ञाशील नहीं कहना चाहते हैं। चलिए यह कहते हैं कि अगर विचार मशीन की तरह व्यवहार करता रहता है तो यह कोई मुसीबत खड़ी नहीं करेगा, सिर्फ अपना काम करेगा। किन्हीं विचित्र कारणों से विचार एक मशीन से ज्यादा व्यवहार करने की कोशिश करता है।

कृ. : हां, विचार एक मशीन से ज्यादा कुछ करने की कोशिश कर रहा है।

डे.बो.: अब बोध के साथ सजगता आती है और यह विचार में अंकित ('रिकॉर्ड') भी हो सकता है। अगर बोध मस्तिष्क की भौतिक संरचना को प्रभावित करता है तो यह प्रभाव किसी तरह स्मृति की सामग्री में अंकित हो जाता है।

कृ. : वह ठीक है। पर थोड़ा रुकिए, मैं कुछ पीछे जाना चाहता हूं। आपको किसी चीज़ का पूर्ण बोध होता है; मान लीजिए, लोभ का आपको पूर्ण बोध होता है। उस बोध के कारण आपके क्रियाकलाप यांत्रिक नहीं रह जाते, यानी आपके विचार अब लोभ के पीछे नहीं भागते हैं।

डे.बो.: लेकिन क्या विचार का एक दूसरा हिस्सा नहीं है जो यांत्रिक तो है लेकिन ज़रूरी है? उदाहरण के लिए वे जानकारियां जो विचार में जमा हैं।

कृ. : ठहरिए, मैं बस इसी पर आ रहा हूं। आपको लोभ की प्रकृति और संरचना का पूर्ण रूप से बोध होता है और इस प्रकार लोभ का अंत हो जाता है। तब विचार की क्या भूमिका रह जाती है?

डे.बो.: उसके पास करने के लिए अब भी यांत्रिक क्रियाकलाप बचते हैं।

कृ. : नहीं, वह खत्म हो जाता है, अब आप लोभी नहीं रहते।

डे.बो.: हां, पर इसके साथ और भी चीज़ें हैं जो अभी खत्म नहीं हुई हैं, जैसे व्यावहारिक विचार।

कृ. : लेकिन अब आप लोभी नहीं रह गए हैं। वह प्रतिक्रिया, वह संवेग, वह यांत्रिक आदत अब खत्म हो गई है। तब विचार की क्या भूमिका है?

डे.बो.: लेकिन विचार की कुछ भूमिका तो है। जैसे, अगर आपको कहीं जाने के लिए रास्ता खोजना हो।

कृ. : किस लिए? जब मुझे कोट की ज़रूरत होगी तो मैं ले लूंगा – लेकिन वहां लोभ तो नहीं होगा।

डे.बो.: नहीं होगा, क्योंकि विचार का लोभ के साथ तादात्म्य नहीं रहा। अब आपके पास तर्कसंगत विचार है। जबकि लोभ असंगत, विवेकहीन विचार है।

कृ. : हां, लोभ विवेकहीन है।

डे.बो.: पर तर्कसंगत विचार तो है, जैसे अगर आप कोई हिसाब

लगाना चाहते हैं।

कृ. : जब आप लोभ को पूर्ण रूप से देख लेते हैं तो आपके साथ कुछ घटित होता है।

डे.बो.: पर क्या आप यह कह रहे हैं कि तब कोई विचार नहीं बचता?

कृ. : विचार आवश्यक नहीं रहता।

डे.बो.: तब आप अपना रास्ता कैसे ढूंढेंगे? आप अपनी स्मृति का कैसे इस्तेमाल करेंगे?

कृ. : देखिए, मैं अब लोभी नहीं रहा। बोध के क्षेत्र में मुझे विचार की आवश्यकता नहीं है और इसलिए विचार इस सब में प्रवेश नहीं करता।

डे.बो.: बोध में इसकी आवश्यकता नहीं होती लेकिन फिर भी इसका कुछ उपयोग तो रहता है।

कृ. : मैं यह कह रहा हूं कि लोभ में इसका कोई स्थान नहीं है। पूर्ण बोध में विचार का कोई स्थान नहीं है।

डे.बो.: उस बोध में नहीं है।

कृ. : केवल बोध में ही नहीं – उस संदर्भ में विचार का अस्तित्व ही नहीं रहता। आपको यह बोध होता है कि हर विश्वास विवेकरहित है, विश्वास की पूरी संरचना का बोध होता है, और तब विश्वास का कोई स्थान नहीं रह जाता आपके विचार और मस्तिष्क में। यदि मैं विश्वास के पूरे स्वरूप/स्वभाव को देख लेता हूं तो उसका अंत हो जाता है।

विचार ने जिस चीज़ का निर्माण किया है उसमें विचार का प्रवेश तब कहां होता है? पता नहीं मैं कुछ स्पष्ट कर भी पा रहा हूं या नहीं! देखिए, मैं – फिलहाल मुझे 'मैं' शब्द का प्रयोग करना पड़ रहा है – विश्वास और भय के पूरे स्वरूप को देखता हूं, और चूंकि यह देखना पूर्ण बोध है, विश्वास का मेरे विचार-जगत में, मेरे मस्तिष्क में अस्तित्व ही नहीं रहता। अब, यहां विचार कहां आता है?

डे.बो.: उस समय नहीं आता।

कृ. : वह खत्म हो जाता है। पूर्ण बोध में विचार का कोई स्थान नहीं

है। विचार तब क्रियाशील होता है जब भोजन, कपड़े या आवास की ज़रूरत होती है। आपका क्या कहना है?

डे.बो.: हां, ऐसा हो सकता है।

कृ. : मैं इस पर प्रश्न करना चाहता हूं। इसमें गहराई से जाना चाहता हूं।

डे.बो.: लेकिन जिस बिन्दु से हमने शुरुआत की थी वहां हमें यह समझना था कि विचार ने जो कुछ भी किया है वह क्यों किया है। दूसरे शब्दों में, जब पूर्ण बोध होता है तो विचार के लिए कोई स्थान नहीं होता। अब जब हम व्यावहारिक क्रियाकलापों पर आते हैं तो आप कह सकते हैं कि हमारे पास पूर्ण बोध नहीं है किंतु हम पहले इकट्ठी की गई जानकारियों पर निर्भर हैं और इसलिए हमें विचार की ज़रूरत है।

कृ. : हां, वहां पर है। घर बनाने के लिए उसकी ज़रूरत है।

डे.बो.: आप पूर्व में इकट्ठी की गई जानकारियों पर आश्रित हैं, आपको सीधे यह बोध नहीं हो सकता कि मकान कैसे बनाया जाता है।

कृ. : जी हां।

डे.बो.: पर मनोवैज्ञानिक मामलों में...

कृ. : जब पूर्ण बोध होता है तो विचार मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया में प्रवेश नहीं करता।

डे.बो.: हां, मनोवैज्ञानिक बोध में इसका स्थान नहीं है, पर भौतिक समझ के क्षेत्र में इसका स्थान हो सकता है।

कृ. : ऐसा ही है।

डे.बो.: लेकिन फिर भी लोग यह हमेशा पूछेंगे कि विचार एक ग़लत दिशा में क्यों चला गया, क्यों वह अजीब हरकतें करने लगा, क्यों वह उस क्षेत्र में चला गया जहां उसका कोई स्थान ही नहीं था।

कृ. : क्या हम यह कह सकते हैं कि विचार भ्रांति उत्पन्न करता है?

डे.बो.: हां, पर वह ऐसा क्यों करेगा, क्यों करना चाहेगा? ऐसा करने

के लिए उसे कौन विवश करता है?

कृ. : क्योंकि विचार ने बोध का स्थान ले लिया है।

डे.बो.: लेकिन वह ऐसा क्यों करेगा?

कृ. : विचार क्यों ऐसी कल्पना करेगा कि वह संपूर्ण को समझ रहा है?

डे.बो.: या, वह *कुछ भी* समझ रहा है।

कृ. : क्या ऐसा होता है कि जब बोध होता है, और चूंकि उस बोध ा में विचार, समय इत्यादि की कोई गति नहीं होती है, तब मन ज़रूरत के अनुसार विचार का प्रयोग करता है, नहीं तो वह खाली रहता है।

डे.बो.: क्या हम इसे दूसरी तरह से देख सकते हैं? ऐसा मन जब विचार का उपयोग करेगा तो उसे पता होगा कि यह विचार *है* और वह यह कल्पना कभी नहीं करेगा कि यह विचार नहीं है।

कृ. : हां। उसे यह पता होगा कि यह विचार है, और कुछ नहीं।

डे.बो.: यदि यह केवल विचार है तो इसका बहुत ही सीमित अर्थ है और हमें उसे उतना महत्त्व देने की ज़रूरत नहीं।

कृ. : हां।

डे.बो.: मुझे ऐसा लगता है कि ख़तरा यह है कि एक ऐसा मन है जो यह महसूस नहीं करता कि यह विचार है। एक बिन्दु पर जाकर यांत्रिक प्रक्रिया आरम्भ होती है जो किन्हीं कारणों से यह स्वीकार नहीं करती या जानती ही नहीं कि वह यांत्रिक है।

कृ. : क्या आप यह भी कहेंगे कि मनुष्य को कुछ समय पहले ही यह मालूम हुआ कि विचार भौतिक या रासायनिक है। यही कारण है कि विचार ने पहले इतना अधिक महत्त्व प्राप्त कर लिया था?

डे.बो.: हां, यह बिल्कुल सही है कि अभी हाल ही में विज्ञान ने विचार के भौतिक और रासायनिक गुणों का पता लगाया है।

कृ. : हमारी आदत, हमारे संस्कार, विचार को जीवन में प्राथमिक चीज़ मानने के रहे हैं। विचार ने यह कभी महसूस नहीं किया

कि यह सीमित है। यही हम कह रहे हैं न?

डे.बो.: हां, कुछ ऐसा ही।

कृ. : और हम यह भी कह रहे हैं कि पूर्ण बोध के साथ विचार में परिवर्तन होता है।

डे.बो.: विचार का क्या होता है तब?

कृ. : यांत्रिक होने के कारण विचार केवल यंत्र की तरह ही काम करता है। वह किसी मनोवैज्ञानिक तत्व का इस्तेमाल नहीं करता।

डे.बो.: इसे थोड़ा साफ कर लें। कोई नया आविष्कार होता है, कोई नयी चीज़ विचार में, यथार्थ के क्षेत्र में आती है। पर यहां हम कह रहे हैं कि वह बोध भी हो सकता है।

कृ. : मुझे लगता है ऐसा ही है।

डे.बो.: बोध के कारण विचार बदलता है, पर वह यांत्रिक ही रहता है।

कृ. : हां, ऐसा ही है, यही हम कह रहे हैं।

डे.बो.: बोध के द्वारा विचार बस अपने कार्य करने का ढंग बदल लेता है, इसलिए सृजनशीलता विचार में नहीं बल्कि बोध में होती है।

कृ. : जिसके मायने हैं कि विचार ने 'मैं' का निर्माण किया और वह 'मैं' विचार से स्वतंत्र हो गया। यह 'मैं' विचार का हिस्सा होने के साथ एक मनोवैज्ञानिक संरचना है। बोध तभी हो सकता है जब 'मैं' नहीं हो।

डे.बो.: 'मैं' के रूप में यह काल्पनिक संरचना वास्तविक भी है, लेकिन इस 'मैं' में एक प्रकार का केन्द्र शामिल है। क्या ऐसा नहीं है?

कृ. : हां, बिल्कुल। क्या वह केन्द्र विचार से स्वतंत्र है?

डे.बो.: ऐसा लगता है कि केन्द्र ही विचार है।

कृ. : बिल्कुल, ऐसा ही है। इसीलिए तो वह विखंडित है।

डे.बो.: आप कह रहे थे कि हम केन्द्र के माध्यम से सोचते हैं, इसलिए विखंडन होगा ही।

कृ. : निश्चय ही । विखंडन का मूल कारण है कि हम केन्द्र से क्रियाशील होते हैं।

डे.बो.: हमें लगता है कि हम मनोवैज्ञानिक तौर पर एक केन्द्र से क्रियाशील होते हैं। भौतिक रूप से हम किसी केन्द्र से क्रियाशील होने के लिए बाध्य हैं क्योंकि शरीर हमारी अनुभूति के जगत का केन्द्र है। मनोवैज्ञानिक तौर पर हम इसी भौतिक प्रक्रिया की नकल करने लगते हैं और केन्द्र के रूप में विचार को मान लेते हैं। केन्द्र के रूप में भौतिक तौर पर विचार उपयोगी था, लेकिन फिर वह मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में भी चला आया।

कृ. : बिल्कुल, इसीलिए तो विचार विखंडनकारी है।

डे.बो.: क्या विचार का कोई ऐसा अंश है जो केन्द्र से क्रियाशील नहीं होता? या उसे हमेशा होना ही होता है?

कृ. : उसे होना होगा। क्योंकि विचार स्मृति है जो केन्द्र से सक्रिय होती है।

डे.बो.: आइए इसका पता लगाएं। उसे केन्द्र से ही क्यों सक्रिय होना पड़ता है? स्मृति बिना केन्द्र के क्यों नहीं हो सकती? मुझे यह स्पष्ट नहीं हो रहा है कि स्मृति और जानकारी जैसे हैं वैसे क्यों नहीं रह सकते।

कृ. : मात्र जानकारी भी हो सकती है।

डे.बो.: क्या उसके लिए केन्द्र का होना ज़रूरी है?

कृ. : यदि वह सिर्फ जानकारी है तो उसे केन्द्र की ज़रूरत क्यों पड़ेगी?

डे.बो.: मुझे यह समझ में नहीं आ रहा है कि विचार को केन्द्र का निर्माण करना ही क्यों पड़ा? हमें यह पता था कि केन्द्र है, लेकिन हमने उस केन्द्र को मनोवैज्ञानिक तौर पर इतना महत्त्व क्यों दे दिया?

कृ. : क्योंकि विचार कभी यह स्वीकार नहीं करता है कि वह यांत्रिक है।

डे.बो.: विचार यह मानने को तैयार नहीं है कि वह यांत्रिक है। इसका

मतलब यह कैसे हुआ कि उसे एक केन्द्र की ज़रूरत पड़ी? विचार ने केवल केन्द्र का निर्माण नहीं किया, व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए केन्द्र की धारणा पहले से उसके पास थी। हुआ यह कि विचार ने उस धारणा का इस्तेमाल मनोवैज्ञानिक रूप से अपने लिए कर लिया।

कृ. : हां।

डे.बो.: अब सवाल है कि वह ऐसा क्यों कर रहा था।

कृ. : एक बड़े ही साधारण कारण से। विचार ने कहा : मैं यांत्रिक नहीं बना रहा सकता, मुझे कुछ अधिक होना चाहिए।

डे.बो.: तब केन्द्र उसे किस तरह अधिक या बड़ा बना देता है?

कृ. : क्योंकि 'मैं' उसे एक स्थायित्व दे देता है?

डे.बो.: हमें इसे और स्पष्ट करने का प्रयास करना चाहिए कि केन्द्र झूठे तौर पर उसे स्थायित्व देता है।

कृ. : विचार ने इस माइक्रोफोन का निर्माण किया है। यह एक मायने में 'स्थायी' है।

डे.बो.: हां, सापेक्ष तौर पर स्थायी।

कृ. : और हां, विचार ने एक स्थायी सत्ता के रूप में 'मैं' का निर्माण किया है।

डे.बो.: ठीक है, पर उसने स्थायी होने के लिए केन्द्र को ही क्यों चुना?

कृ. : शायद उसने सूर्य को देखकर ऐसा किया जो कि ब्रह्मांड का केन्द्र है। जैसा कि आपने कहा था कि केन्द्र सभी चीज़ों को जोड़ने का काम करता है।

डे.बो.: हां, वह एकत्व लाता है।

कृ. : एकत्व, परिवार इत्यादि। लेकिन पूर्ण बोध के साथ ही केन्द्र बिल्कुल अनावश्यक हो जाता है।

डे.बो.: यानी जब पूर्ण बोध नहीं है तब वह आवश्यक है।

कृ. : वह आवश्यक नहीं है, लेकिन हो ऐसा ही रहा है।

डे.बो.: अपनी यांत्रिकता को न देख पाने के कारण विचार ने अपनी

पैदा की हुई चीज़ों को जीवित मानना शुरू कर दिया।

कृ. : हां, यह सही है।

डे.बो.: उन चीज़ों की अस्थिरता और नश्वरता को देखकर वह किसी स्थायी हस्ती की स्थापना का प्रयास करने लगा और उसने इस काम में केन्द्र को मददगार पाया। केन्द्र से सभी चीज़ों को एक जगह बांधे रखा जा सकता था । इसलिए, जब हर चीज़ छूट कर गिर रही हो और आप एक केन्द्र की स्थापना कर दें तो वह केन्द्र उन सब चीज़ों को एक साथ पकड़े रखेगा। विचार को अगर स्वयं उसके भरोसे छोड़ दिया जाए तो वह अलग गिर पड़ेगा।

कृ. : बिल्कुल ठीक। तो, जब आपको किसी चीज़ का पूर्ण रूप से बोध हो जाता है तो केन्द्र अस्तित्वहीन हो जाता है। इसके साथ कुछ और भी होता है। बोध का मतलब क्या यह नहीं है उसमें हर चीज़ शामिल है? क्या वह केन्द्रीय चीज़ नहीं है जो सबको एक साथ जोड़ती है?

डे.बो.: बोध का होना?

कृ. : बोध का होना।

डे.बो.: उसकी क्रिया।

कृ. : वह क्रिया – *कि यह झूठ है*।

डे.बो.: अच्छा, चलिए हम इसे दूसरी तरह से रखते हैं। बोध की क्रिया उन सब चीज़ों को एक साथ जोड़ देती है जिन्हें आप जानते हैं, और विचार उस क्रिया की नकल कर रहा है – एक केन्द्र का निर्माण करके जो हर चीज़ को बांधे हुए है, और इस तरह विचार केन्द्र को बोध का गुण दे देता है।

कृ. : बिल्कुल सही। केन्द्र के साथ और भी चीज़ें, जैसे द्रष्टा इत्यादि, आ जाती हैं।

डे.बो.: और विचारकर्ता भी। यह भी अपनी उत्पत्ति उस केन्द्र से मानता है, और इस तरह स्वयं को सत्य के स्थान पर रख लेता है।

कृ. : बिल्कुल ठीक।

डे.बो.: और इसी तरह जीवंतता आदि के गुण स्वयं को दे देता है।

कृ. : क्या बोध एक-एक कर के होता है, जैसे पहले लोभ का, फिर भय का; या बोध एक साथ होता है जिसमें सब कुछ आ जाता है? आप समझ रहे हैं?

डे.बो.: हां।

कृ. : तो यह ऐसा नहीं है कि पहले लोभ का बोध हुआ, फिर विश्वास का, और फिर संगठित धर्म का।

डे.बो.: चलिए हम ऐसा कहते हैं : जो कुछ भी *है* उसका बोध।

कृ. : हां - केवल बोध होता है।

डे.बो.: अब एक प्रश्न है जिसे हम शायद स्पष्ट कर सकें। आपने कहा : सत्य वह है जो *है*।

कृ. : हां, केवल बोध है, बोधकर्ता नहीं।

डे.बो.: बोधकर्ता नहीं है, परंतु जो *है* वह भी तो बोध है, क्या नहीं है?

कृ. : हां, बोधकर्ता ही केन्द्र है।

डे.बो.: हां, विचार केन्द्र पर बोधकर्ता, विचारक और कर्ता के गुण थोप देता है।

कृ. : अनुभवकर्ता आदि के रूप में।

डे.बो.: जब विचार ने केन्द्र का आविष्कार कर लिया तो वह तरह-तरह के गुण उस केन्द्र पर आरोपित कर सकता है, जैसे सोचने और महसूस करने का गुण।

कृ. : सही है।

डे.बो.: और जब दुख या सुख महसूस होता है तो वह इसे केन्द्र के जिम्मे सौंप देता है। और इस तरह वह जीवंत हो उठता है। क्या आप यह कह सकते हैं कि पीड़ा तभी होती है जब दुख को केन्द्र के साथ जोड़ दिया जाता है?

कृ. : बिल्कुल। जब तक केन्द्र है तब तक दुख रहेगा ही।

डे.बो.: हां, क्योंकि जब केन्द्र नहीं है तब दुख केवल विचार में है।

कृ. : केवल भौतिक रूप में।

डे.बो.: भौतिक रूप में या स्मृति में, जो कि कुछ नहीं है।

कृ. : जो कि कुछ नहीं है, हां।

डे.बो.: पर यदि दुख की स्मृति को केन्द्र से जोड़ा जाता है तो वह वास्तविक बन जाता है, साफ तौर पर वह कुछ और बड़ी चीज़ भी बन सकता है।

कृ. : तो यह स्पष्ट हो रहा है कि पूर्ण बोध में विचार का कोई स्थान नहीं है।

डे.बो.: और वही बोध क्रिया करता है, और उस क्रिया में विचार का स्थान हो सकता है। पिछले दिनों हम इसी पर चर्चा कर रहे थे।

कृ. : हां। आइए हम इसे स्पष्ट कर लें। पूर्ण बोध होता है – और उसमें विचार नहीं आता। वह बोध ही क्रिया है।

डे.बो.: हां, और वह बोध विचार की गुणवत्ता को बदल देता है – उसी तरह जैसे वह मस्तिष्क की कोशिकाओं को बदलता है।

कृ. : हां, विचार के पास केवल यांत्रिक काम हैं।

डे.बो.: यांत्रिक से हमारा मतलब है प्रज्ञाहीनता, सृजनशील न होना।

कृ. : तो, अगर विचार केवल यांत्रिक है तब यह कहीं भी यंत्र की तरह क्रियाशील हो सकता है, बिना किसी मनोवैज्ञानिक केन्द्र के, तब कोई समस्या नहीं होगी।

डे.बो.: मुझे लगता है शुरू में ही विचार ने गलती से स्वयं को जीवंत और सृजनशील मान लिया और फिर स्थायित्व के लिए उसने केन्द्र की स्थापना की ।

कृ. : बिल्कुल ठीक। तो अब हमने देख लिया कि विचार विखंडनशील क्यों है।

डे.बो.: पर वह विखंडनशील क्यों है?

कृ. : केन्द्र के कारण। स्थायित्व की दृष्टि से विचार ने केन्द्र का

निर्माण किया और उस केन्द्र ने हर चीज़ को एक-साथ बांधे रखने के लिए इकाई का निर्माण कर लिया।

डे.बो.: हां, पूरा विश्व केन्द्र के द्वारा एक-साथ बंधा हुआ है। अगर कोई व्यक्ति अपने केन्द्र को हटता हुआ पाता है तो उसे लगता है कि उसकी पूरी दुनिया ही उजड़ गई।

कृ. : ठीक।

डे.बो.: तो केन्द्र और विश्व एक ही हैं।

कृ. : बिल्कुल सही - इसलिए विचार विखंडनशील है।

डे.बो.: इससे यह स्पष्ट तो नहीं होता कि वह क्यों विखंडनशील है।

कृ. : क्योंकि उसने स्वयं को उस चीज़ से अलग कर लिया है जिसका उसने निर्माण किया है।

डे.बो.: यही बात है : आइए इसे अच्छी तरह स्पष्ट कर लें। विचार ने स्वयं को केन्द्र की गुणवत्ता दे दी है और स्वयं को केन्द्र से अलग मान लिया है। जबकि वास्तविकता यह है कि विचार ने केन्द्र का निर्माण किया है और विचार ही केन्द्र है।

कृ. : विचार ही केन्द्र है।

डे.बो.: पर विचार केन्द्र को जीवित और वास्तविक होने की गुणवत्ता दे देता है और यही विखंडन है।

कृ. : यही मूलभूत बात है।

डे.बो.: यहीं से बाकी जीवन के विखंडित होने की प्रक्रिया आरंभ होती है। विचार और केन्द्र दोनों अलग-अलग हैं, इस बात को बनाए रखने के लिए विचार हर चीज़ को तोड़ेगा-मरोड़ेगा। और यहीं भ्रांति पैदा होती है - क्योंकि या तो यह उन चीज़ों को अलग करता है जो अलग नहीं हैं, अथवा यह उन चीज़ों को एक साथ मिलाता है जो अलग-अलग हैं। इस कल्पना को बनाए रखने के लिए कि केन्द्र और विचार अलग-अलग हैं, सारी चीज़ों को इसी के अनुसार ढलना पड़ता है।

कृ. : सारे अस्तित्व को उस केन्द्र के अनुसार ढलना पड़ता है।

डे.बो.: उदाहरण के लिए अगर कोई व्यक्ति केन्द्र को कोई विशेष राष्ट्र होने का गुण सौंपता है, तो वह अन्य राष्ट्रों को अपने केन्द्र से अलग करके देखेगा। इस तरह वह अपने केन्द्र को पकड़े रखने के लिए मानवजाति को विखंडित करेगा। और इस तरह पूरा विश्व टुकड़ों में बंट जाएगा।

कृ. : मैं किसी और चीज़ को लेना चाहता हूं। यदि मुझे विश्वास की प्रकृति का बोध होता है तो वह विश्वास खत्म हो जाता है। इसी तरह जब भय का पूर्ण बोध होता है तो वह खत्म हो जाता है; जब लोभ का पूर्ण बोध होता है तो वह खत्म हो जाता है। क्या बोध एक-के-बाद-एक क्रमशः होता है, या संपूर्ण परिदृश्य का एक साथ पूरा बोध होता है?

डे.बो.: यदि समूचे परिदृश्य का एक साथ पूर्ण बोध हो जाता है तो फिर करने के लिए बचता क्या है?

कृ. : यही तो मैं पता लगाना चाहता हूं। क्या बोध संपूर्ण होता है और इस तरह पूरे परिदृश्य को साफ कर देता है?

डे.बो.: तब वहां बचता क्या है करने के लिए ?

कृ. : ठहरिए, पहले हम देख लें कि क्या ऐसा है। तो इसके लिए एक-एक करके लोभ, भय, विश्वास, सुख इत्यादि में नहीं जाना होगा - बोध एक बार में पूरा धरातल साफ कर देगा।

डे.बो.: क्या आप यह कह रहे हैं कि मनुष्य को विचार के संपूर्ण स्वरूप का बोध हो सकता है - या इसके परे कुछ और ?

कृ. : उसके परे थोड़ा-सा और। बोध विचार के स्वरूप को देखता है, और इसके साथ ही उसके समस्त अंशों को भी देख लेता है।

डे.बो.: हां, मैं समझ रहा हूं। इसके साथ यहां एक प्रश्न आता है जिसे मैं कुछ समय से पूछना चाहता था। 'ट्रेडीशन एंड रेवोल्यूशन' किताब में आपने सार तत्त्व ('एसेंस') का जिक्र किया है, कि बोध सार को निकाल कर लाता है। क्या आपको याद है?

कृ. : नहीं मुझे याद नहीं - क्षमा कीजिएगा।

डे.बो.: कुछ ऐसा लगता है कि जिसे हम पूर्ण बोध कह रहे हैं वह प्रज्ञा है। और उसमें से वह चीज़ निकलकर आती है जिसे आप सार कहते हैं – जैसे फूल में से सत्त्व को *डिस्टिल* करके निकालना।

कृ. : हां।

डे.बो.: क्या यह सार समग्रता/समष्टि जैसा कुछ है?

कृ. : बिल्कुल, वह यही है। अब रुकिए, मैं इसे बिल्कुल साफ कर देना चाहता हूं। क्या आप यह कहेंगे कि भय, लोभ, ईर्ष्या, विश्वास का नहीं बल्कि विचार द्वारा निर्मित समस्त चीजों का तथा केन्द्र का संपूर्ण बोध होता है।

डे.बो.: हां, यह समस्त का बोध है। कभी-कभी एक कथन का लोग इस्तेमाल करते हैं : *एसेंस एंड टोटैलिटी* ('सार और समष्टि')।

कृ. : सार और समग्र का बोध।

डे.बो.: क्या यह उपयुक्त लगता है?

कृ. : 'सार' शब्द को लेकर मुझे कुछ संकोच है।

डे.बो.: फिर हम ऐसा कहते हैं– समग्र का बोध।

कृ. : थोड़ी देर के लिए 'सार' शब्द को छोड़ देते हैं। लोभ, ईर्ष्या आदि का आंशिक दर्शन नहीं होता– बल्कि पूर्ण बोध होता है। इसलिए पूर्ण बोध का अर्थ है उन सब चीज़ों को एक साथ देख लेना जिन्हें विचार ने गढ़ा है, और साथ में यह भी देख लेना कि विचार ने स्वयं को एक अलग केन्द्र के रूप में स्थापित कर लिया है।

डे.बो.: अब हमें इसे और स्पष्ट करना पड़ेगा, क्योंकि समग्र का मतलब ये सब चीज़ें भी हो सकती हैं, या इसका आशय कुछ और भी हो सकता है।

कृ. : मेरे लिए इसका अर्थ कुछ और ही है। पूर्ण बोध का अर्थ है यह देखना कि विचार कैसे स्वयं को कुछ गुण दे देता है, कैसे वह केन्द्र का निर्माण कर लेता है और उस केन्द्र को कुछ विशेषताएं दे देता है, और साथ ही उन सारी चीज़ों को देखना

जो मनोवैज्ञानिक केन्द्र से उपज रही हैं।

डे.बो.: यही संपूर्ण संरचना है। इसे ही तो हम प्रायः सार या मूलभूत ढांचा कहते हैं।

कृ. : हां, यदि आप उसे ''सार'' कहते हैं तो मैं सहमत हूं।

डे.बो.: और वह संरचना सार्वभौमिक है। क्या आप इससे सहमत होंगे कि बात केवल किन्हीं खास विचारों या समस्याओं की नहीं है?

कृ. : हां, यह हर जगह है। अब क्या ऐसा बोध संभव है? आप मुझे कहते हैं कि यह संभव है – बस और कुछ नहीं। चूंकि आप मुझे बताते हैं, मैं इसे देखता हूं, अनुभव करता हूं; आप जो कह रहे हैं, उसके सत्य को देखता हूं। आप जो कह रहे हैं, वह सत्य है; यह मेरा या आपका नहीं है, यह केवल सत्य है।

डे.बो.: *यदि आप कहते हैं* कि यह सत्य है, तो यह वही है जो कुछ वर्तमान है।

कृ. : जो कि यथार्थ है।

डे.बो.: हां, लेकिन यह सत्य और यथार्थ दोनों है। मैं इसे और साफ कर देना चाहता हूं। जब हम कहते हैं कि सत्य है, और यथार्थ है – तब हम जिस तरह सामान्य तौर पर 'यथार्थ' शब्द का इस्तेमाल करते हैं, वास्तव में यही सही तरीका होता है 'व्यक्ति' ('इंडीविजुअल') शब्द के इस्तेमाल का। मुझे लगता है कि यथार्थ व्यक्तिक यानी अविभाजित ('अनडिवाइडेड') है।

कृ. : हां, यथार्थ एक है, अविभक्त है।

डे.बो.: यथार्थ अविभक्त है, पर यथार्थ क्षण-क्षण बदल भी सकता है। लेकिन जब हमारी दृष्टि सार पर जाती है, जब हम समग्र या समस्त को देखते हैं तो उसमें सब कुछ आ जाता है।

कृ. : बिल्कुल सही।

डे.बो.: इसलिए सत्य व्यक्ति और यथार्थ के भी परे जाता है क्योंकि वह समग्र को देखता है। वह सार्वभौम और अनिवार्य को देखता है, विचार के समस्त स्वरूप को देखता है। इसलिए

उसमें विचार का प्रत्येक व्यक्तिगत उदाहरण शामिल रहता है।

कृ. : यह सही है। जब यह देख लिया जाता है तो विचार केवल यांत्रिक रहता है।

डे.बो.: तब विचार यह स्वीकार कर लेता है कि वह एक यंत्र भर है।

कृ. : नहीं, विचार को स्वीकार नहीं करना पड़ता, वह है ही यांत्रिक।

डे.बो.: हां, विचार बदल चुका है और उसने स्वयं को गैरयांत्रिक मानना बन्द कर दिया है, अब वह केवल यांत्रिक है। मुझे एक बार ऐसा प्रतीत हुआ कि अगर कोई व्यक्ति संस्कारबद्ध पैदा हुआ है और वह इससे बाहर होना चाहता है तो उसके लिए कोई रास्ता नहीं है। संस्कारबद्ध मन के द्वारा बाहर निकलना संभव नहीं है। इसलिए एक ही तरीका बचता है कि वह ऐसे अस्तित्व के संपर्क में आए जो संस्कारबद्ध न हो।

कृ. : हां, कृपया आगे बढ़िए।

डे.बो.: इसलिए अगर कोई ऐसा व्यक्ति है तो वह व्यक्ति महत्त्वपूर्ण नहीं है।

कृ. : हां।

डे.बो.: वह बस सार्वभौम व्यवस्था का एक अंग है। बहस के नजरिये से तर्क करना हो तो यह कहा जा सकता है कि मानवता एक ऐसी अवस्था में पहुंच गई है जहां वह बदलाव के लिए तैयार है।

कृ. : हां, ऐसा ही कुछ लोग कहते हैं।

डे.बो.: बहुत से लोग यह कह चुके हैं। क्योंकि संस्कारबद्ध अवस्था में रहते हुए बदलना संभव नहीं है, इसलिए यह ज़रूरी है कि. . .

कृ. : कोई उत्प्रेरक हो।

डे.बो.: संस्कारबद्धता से रहित एक नाभिक ('न्यूक्लिअस')। यही विचार मेरे दिमाग में आया था।

कृ. : हम अगर पीछे जाएं तो जब विचार के स्वरूप और उसकी सारी गतिविधियों का पूर्ण बोध होता है तो इसका तात्पर्य है कि चेतना की अंतर्वस्तु का संपूर्ण बोध हो गया। अंतर्वस्तु से चेतना बनी है और यही केन्द्र थी। पूर्ण बोध तभी हो सकता है जब केन्द्र नहीं हो; इसके बाद चेतना पूर्णतया भिन्न होगी।

डे.बो.: हां। तब उसके स्वरूप के बारे में आप क्या कहेंगे?

कृ. : उसका स्वरूप क्या होगा? जैसा कि आपने कहा था : केन्द्र एकीकरण का माध्यम है।

डे.बो.: यही वह तरीका है जिससे लोग एकत्व का प्रयास करते रहे हैं।

कृ. : पर यह सफल नहीं हुआ कभी। जब विचार के संपूर्ण स्वरूप का बोध होता है तो केन्द्र नहीं रहता, और तब चेतना निश्चित रूप से भिन्न होती है।

डे.बो.: लेकिन चेतना शब्द का जो सामान्य अर्थ है उसमें विचार भी आ जाता है। क्या वह अब भी जारी रहता है?

कृ. : यदि विचार नहीं है तो चेतना भी नहीं हो सकती।

डे.बो.: तब आप किसे चेतना कहेंगे?

कृ. : तब, जैसा कि मैंने कहा था, वह बिल्कुल भिन्न होगी। अभी जो चेतना हमारे पास है उसमें केन्द्र अपनी सारी सामग्री, विचार और गतिविधि के साथ क्रियाशील है, और जब उसका पूर्ण बोध होगा तो वह नहीं रहेगा।

डे.बो.: जब केन्द्र नहीं रहता तो पूरी व्यवस्था भिन्न हो जाती है। हां, और आपने मस्तिष्क-कोशिकाओं का भी जिक्र किया था - तब इन कोशिकाओं की कार्यशैली का बदलना भी इसमें निहित हो सकता है।

कृ. : मुझे ऐसा लगता है।

डे.बो.: यह भी हो सकता है कि अन्य दूसरी मस्तिष्क कोशिकाएं कार्य करने लगें।

कृ. : मुझे मालूम नहीं। शायद वे भिन्न तरीके से कार्य करने लगती

हैं। सर, करुणा क्या है? क्या केन्द्र के पास करुणा है?

डे.बो.: मैं तो यही कहूंगा कि केन्द्र किसी भी वास्तविक चीज़ के काबिल नहीं है।

कृ. : हां। क्या केन्द्र स्वयं पर करुणा की गुणवत्ता आरोपित कर सकता है?

डे.बो.: अवश्य कर सकता है।

कृ. : कर सकता है। जैसे ईश्वर इत्यादि का गुण। और यदि गुणों को आरोपित करने की प्रक्रिया बिल्कुल न हो तो क्या करुणा होगी? क्या पूर्ण बोध करुणा है?

डे.बो.: ऐसा होना होगा – सभी के प्रति संवेदना का समावेश करने के लिए।

कृ. : मैं समझता हूं कि पूर्ण बोध का एक गुण करुणा है।

डे.बो.: देखिए, केन्द्र के पास वही संवेदनाएं होंगी जो उसे दी जाएंगी। इसलिए उसके पास उन्हीं के लिए करुणा होगी, जिनके साथ उसका तादात्म्य है।

कृ. : बिल्कुल। जैसे, मैं आपको प्यार करता हूं, और किसी को नहीं। या मेरा प्यार औरों के लिए है, पर तुम्हारे लिए नहीं।

डे.बो.: वहां कोई गहरी समझ नहीं होगी, इसलिए उसका कोई मतलब नहीं होगा।

कृ. : यह सब बड़ा रोचक है। आप कैसे किसी ऐसे व्यक्ति को यह सब बतलाएंगे जो भावुक और रूमानी है, अनोखी कल्पनाओं से भरा हुआ है, भ्रांतियों में जीना चाहता है, सेक्स और भय की समस्याओं से घिरा है? उसे आप कुछ कहिए और वह सुनेगा भी नहीं। यहां हमारे पास इन सब बातों में गहराई से जाने के लिए अवकाश है, और हम खोजबीन कर रहे हैं, क्योंकि हम अपने प्रति पूरी तरह से वस्तुनिष्ठ हैं। मुझे लगता है यही वह बिन्दु है जहां करुणा का प्रवेश होता है।

गस्टाड २५ जुलाई, १९७३
लिमिट्स ऑफ थॉट

कृष्णमूर्ति अध्ययन कार्यशालाएं

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर, सह्याद्री में कृष्णमूर्ति की शिक्षा के संदर्भ में निम्नलिखित विषयों पर केंद्रित अध्ययन-कार्यशालाओं का आयोजन किया जा रहा है:-

The Science of a New Religion	:	23 – 29 सितम्बर 2006
Educational Challenges of 21st Century (Hindi Workshop)	:	11 – 17 अक्टूबर 2006
The Mystery of Death (Marathi Workshop)	:	26 – 30 नवम्बर 2006
J. Krishnamurti and the Action of a Silent Mind	:	24 – 30 दिसम्बर 2006
Unconditioning through Choiceless Awareness	:	08 – 12 जनवरी 2007
Transformative Meditations	:	22 – 28 फरवरी 2007
The Alchemy of Love	:	10 – 16 मार्च 2007

कार्यशालाओं में भाग लेने एवं विस्तृत जानकारी के लिए इस पते पर संपर्क करें :

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर सह्याद्री

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, पोस्ट तिवई हिल्स, ता. खेड़-राजगुरु नगर, पुणे-410513 Qksu% 02135-284278] 284346

ईमेलः kscskfi@mhraj.chiraag.com ; kscskfi@pn2.vsnl.net.in

कॉपीराइट सूचना

जे. कृष्णमूर्ति के उद्धरण अन्तर्राष्ट्रीय कॉपीराइट नियम के अन्तर्गत संरक्षित हैं तथा सर्वाधिकारी की लिखित पूर्वानुमति के बिना किसी भी रूप में पुनः प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं। सन् 1968 के पूर्व की कृष्णमूर्ति की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑफ अमेरिका, ओहाय, कैलीफोर्निया का है। सन् 1968 के बाद की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट, ब्रॉकवुड पार्क, इंग्लैंड का है।

राजघाट गैदरिंग २००६

(२६ अक्टूबर-२९ अक्टूबर २००६)

विषय : कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं के साथ हम क्या कर रहे हैं?

;जीमउमरू ींज ंतम ूम कवपदह ूपजी ज्ञशे जमंबीपदहेष्द्ध

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया का वार्षिक सम्मेलन ('पब्लिक गैदरिंग') इस वर्ष राजघाट शिक्षण संस्थान में आयोजित किया जा रहा है। गैदरिंग की शुरुआत २६ अक्टूबर को प्रातः काल में होगी तथा समापन २९ अक्टूबर को सायं काल में होगा। सहभागीजन २५ अक्टूबर की शाम तक राजघाट पहुंच सकते हैं।

रजिस्ट्रेशन एवं गैदरिंग शुल्क

गैदरिंग में भाग लेने के लिए रु. ५००/- का रजिस्ट्रेशन शुल्क मनी ऑर्डर से या 'के.एफ.आई. स्टडी सेंटर, वाराणसी' के नाम डिमांड ड्राफ्ट से नीचे दिए गए पते पर भेजें। कृपया ध्यान दें कि यह राशि आपके न आने की अवस्था में भी वापस नहीं की जाएगी।

दो तरह की आवास-व्यवस्था सहभागियों के लिए उपलब्ध होगी : डॉर्मेटरी एवं डबल रूम एकॉमोडेशन। डॉर्मेटरी में रहने का शुल्क रु. १०००/- तथा डबल रूम एकॉमोडेशन का शुल्क रु. १५००/- होगा। सहभागियों को यह राशि (रजिस्ट्रेशन शुल्क के अतिरिक्त) राजघाट पहुंचने पर जमा करनी होगी।

गैदरिंग में भाग लेने के लिए अपना आवेदन रजिस्ट्रेशन शुल्क के साथ इस पते पर भेजें :

संयोजक, राजघाट गैदरिंग
कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर, कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया
राजघाट फोर्ट, वाराणसी २२१ ००१
फोनः ०५४२-२४३०२८९, २४३०३५३ ईमेलः
kcentrevns@satyam.net.in

हिन्दी में उपलब्ध कृष्णमूर्ति की कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

1-	ज्ञात से मुक्ति (Freedom from the known)	रु. 70-00
2-	ध्यान (Meditations)	रु. 40-00
3-	हिंसा से परे (Beyond Violence)	रु. 100-00
4-	गरुड़ की उड़ान (The Flight of the Eagle)	रु. 70-00
5-	संस्कृति का प्रश्न (This Matter of Culture)	रु. 50-00
6-	शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य (Education and the Significance of Life)	रु. 60-00
7-	शिक्षा संवाद (Krishnamurti on Education)	रु. 100-00
8-	स्कूलों के नाम पत्र (Letters to the Schools I)	रु. 60-00
9-	स्कूलों को पत्र, भाग-२ (Letters to the Schools II)	रु. 40-00
10-	आमूल क्रान्ति की आवश्यकता (Urgency of Change)	रु. 100-00
11-	अन्तिम वार्ताएँ (The Last Talks)	रु. 70-00
12-	मानवता का भविष्य	रु. 40-00
13-	वाशिंगटन वार्ताएँ (Washington D.C.Talks, 1985)	रु. 25-00
14-	मृत्यु और उसके बाद	रु. 40-00
15-	जीविका का प्रश्न	रु. 20-00
16-	सुखी वही जो कुछ नहीं है (Happy is the man who is nothing)	रु. 20-00
17-	सीखने की कला (On Learning)	रु. 15-00
18-	सत्य एक पथहीन भूमि है (Truth is a pathless land)	रु. 10-00
19-	जीवन की पुस्तक (The Book of Life)	रु. 10-00
20-	ध्यान में मन (Mind in Meditation)	रु. 10-00
21-	प्रेम : स्वयं से एक संलाप (A Dialogue with Oneself)	रु. 10-00
22-	आंतरिक प्रस्फुटन (Inward Flowering)	रु. 10-00
23-	परिसंवाद (त्रैमासिक) : एक वर्षीय सदस्यता	रु. 100-00
24-	परिसंवाद (त्रैमासिक) : पाँच वर्षीय सदस्यता	रु. 250-00
25-	परिसंवाद (त्रैमासिक) : आजीवन सदस्यता	रु. 1000-00

पुस्तकें प्राप्त करने के लिए तथा 'परिसंवाद' का सदस्य बनने के लिए संपर्क करें:

जे. कृष्णमूर्ति प्रज्ञा परिषद्

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी221001

ईमेलःtpcrajghat@gmail.com; kcentrevns@satyam.net.in फोनः 05425-2430289, 2430353

'जे. कृष्णमूर्ति परिसंवाद' : जे. कृष्णमूर्ति प्रज्ञा परिषद्, कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी की ओर से श्री राजेश दलाल द्वारा जून 2006 में प्रकाशित। सत्तनाम प्रिंटिंग प्रेस, पांडेयपुर, वाराणसी द्वारा मुद्रित।

सम्पादक : कृष्णनाथ